



National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2024; 1(57): 209-212

© 2024 NJHSR

www.sanskritarticle.com

शुभम नौटियाल

शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादूर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

"ध्यान विमर्श"- "श्रीमद्भगवद् गीता और श्रीमद्भगवद् पुराण"

शुभम नौटियाल

सारांश:

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भगवद् महापुराण दोनों ही ग्रंथ भारतीय ज्ञान साहित्य के अपार भण्डार हैं। भारतीय कला, संस्कृति, योग, विज्ञान एवं आध्यात्मिक चिंतन के रूप में दोनों ग्रंथों का वैशिष्ट्य रहा है। प्रस्तुत शोध में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भगवद् पुराण में ध्यान के स्वरूप का विवेचन किया गया है। गीता के छठे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा ध्यान का वर्णन किया है। गीता के उपदेश में भक्ति का श्रद्धा पूर्वक पालन करने से समस्त पाप, दुःखः, अज्ञान आदि से मुक्ति मिलती है। गीता को भलीभांति पढ़ना और समझना चाहिए, क्योंकि यह भगवान श्री कृष्ण के मुख से निकली हुई ज्ञान की अमृत धारा है। भागवत पुराण में मंगलाचरण द्वितीया स्कन्ध के प्रथम अध्याय में ध्यान का वर्णन प्राप्त होता है। जब ध्यान योग का अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल एवं एकाग्र हो जाये और सभी विषयों से विरक्त हो जाये तो तब नासिका के अग्र भाग पर अपनी दृष्टि जमाकर भगवान का ध्यान करना चाहिए। मुख्य शब्द - श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भगवद् पुराण, ध्यान विमर्श।

प्रस्तावना-

भारतीय ज्ञान परम्परा के अनन्त ज्ञान-विज्ञान भण्डार में प्राचीन से लेकर आधुनिक युग तक हम सभी को ज्ञानरूपी अमृत से पवित्र हुए हैं। जब ध्यान विषय का चिंतन किया जाता है, तो मन में एक प्रसन्नता का भाव उत्पन्न होता है। ध्यान एक सरल और आसान प्रक्रिया है। जो स्वयं को नियन्त्रित एवं प्रसन्नचित्त रखने में सहायक सिद्ध होती है। आधुनिक लोगों के मन में एक प्रश्न बना है कि ध्यान बहुत ही कठिन साधना है। इस भाव को हटाना भी आज के ध्यान साधकों का कार्य है। हमारे ऋषि-मुनियों के द्वारा दिए गये ज्ञान को जन-सामान्य तक प्रसारित किया जाए, जिससे सभी लाभान्वित हो सके। 'ध्यान' शब्द की सिद्धि "ध्यै चिन्तायाम्" धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से होती है। जिसका अर्थ है, चिन्तन या मनन, जब ध्येय वस्तु का ज्ञान एकाकार रूप में परिणत होता है, तब वह ध्यान की स्थिति है। ध्यान साधना से तात्पर्य किसी भी वस्तु, मूर्ति, ज्योति आदि पर निरन्तर व स्थिरता के साथ चिन्तन या मनन करना है। जिससे ध्येय वस्तु के साथ एकतानता बनी रहे तथा किसी भी प्रकार का व्यवच्छेद बीच में उपस्थित न हो। प्रस्तुत शोध पत्र उद्देश्य के अंतर्गत यह जानने का प्रयत्न किया जाएगा कि श्रीमद्भगवद् गीता और श्रीमद्भगवद् पुराण में ध्यान का क्या महत्व, उपयोगिता एवं क्या स्वरूप है? भावी जीवन में इसे कैसे अपनाया जाए कि जिससे हर व्यक्ति का जीवन शान्ति व सुखपूर्वक व्यतीत हो सके और वे अपने भावी लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यान विमर्श

श्रीमद्भगवद् गीता और श्रीमद्भगवद् पुराण दोनों ग्रंथ में ज्ञान का अपार भण्डार है। इनमें प्राणियों की सभी प्रकार से उच्चतम गति कैसे हो? भगवत् प्राप्ति कैसे हो। आदि विषयों पर चिन्तन किया गया है। गीता के महात्म्य में भगवान श्री कृष्ण जी कहते हैं -

Correspondence:

शुभम नौटियाल

शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादूर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तारै।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्मा द्विनिः सूता"॥¹

अर्थात् - गीता के उपदेश में भक्ति का श्रद्धा पूर्वक पालन कीजिए। यही समस्त पाप, दुःखः, अज्ञान आदि को समाप्त करने में सक्षम है। गीता को भलीभांति पढ़ना और समझना चाहिए, क्योंकि यह भगवान श्री कृष्ण के मुख से निकली हुई ज्ञान की अमृत धारा है। इसके अलावा अन्य शास्त्रों के विस्तार की क्या आवश्यकता है। गीता शब्द का मूल रूप गीत था। गीति शब्द का अर्थ है "गाने वाला" गीति शब्द का निर्माण "गै" धातु के साथ "त्त" प्रत्यय के योग से हुआ।

"योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः"॥²

अर्थात् - योगी को सर्वदा अपनी काया (शरीर) मन, तथा आत्मा को परमेश्वर में निरन्तर लगाए रखें, एकान्त स्थान में रहें और बड़ी सज्जता के साथ अपने मन को वश में करके उसे विषय वासनाओं एवं इच्छाओं से मुक्त रखें। अर्थात् कृष्ण भावना भावित व्यक्ति यह अच्छी प्रकार से जानता है, कि प्रत्येक वस्तु इस संसार में ईश्वर (कृष्ण) की है। जिसका वर्णन ईशावास्योपनिषद् में भी किया है (ईशावास्य इदं सर्वं ..) इस भाव से उसके मन में उठने वाली भावनाओं पर नियन्त्रण करने में सहायक सिद्ध होगा। तत्पश्चात्

"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥³

"तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिया।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये"॥⁴

अर्थात्- ध्यान या योग अभ्यास के लिए सर्वप्रथम पवित्र भूमि पर कुशा बिछा दे उस कुशा के उपर मृगछाल रख कर या कोमल आसन बिछा दें। आसन न तो बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। अब वह स्थिरता पूर्वक बैठकर मन सहित समस्त इन्द्रियों तथा वासनाओं पर नियन्त्रण करते हुए मन को किसी एक विषय वस्तु पर केन्द्रित करके अपने हृदय को शुद्ध करने के लिए ध्यान का अभ्यास करें। कहा जाता है कि आसन शुद्धि से मन की शुद्धि होती है। इसलिए आसन को पवित्र करने का वर्णन कर्म-काण्ड आदि क्रियाओं में भी किया जाता है। आगे भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्"॥⁵

अर्थात्-आगे भगवान श्री कृष्ण ध्यान की स्थिति कैसे होनी चाहिए इस विषय पर कहते हैं कि शरीर को किसी भी सुखासन में स्थिर करें,

सिर, गर्दन को एक समान स्थिति में बिना हिलाए स्थिर रखें और अपनी दृष्टि को नासिका के उपर केन्द्रित करें, और निरन्तर दृष्टि बनाए रखें। कहने का तात्पर्य है कि ऐसी स्थिति में बैठें जिससे शरीर के बीच में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो, जैसे पैर दर्द आदि। यदि ऐसा होने लगेगा तो हम ध्यान पर अपने मन को केन्द्रित नहीं कर पाएंगे क्योंकि मेरू (spine) को एक लाइन में स्थिर करने से मन बाह्य विषयों से हटकर अन्दर की ओर केन्द्रित होता है, और हम अपने को अधिक स्थिर महसूस करते हैं। मन को अभ्यास के माध्यम से ही नियन्त्रित किया जा सकता है। भगवान श्री कृष्ण से जब अर्जुन कहते हैं! प्रभु यह मन बहुत ही चंचल है। मन को नियन्त्रित करना बहुत कठिन है इस मन को कैसे वश में किया जाए, तो भगवान कहते हैं, मन को वश में करना क्लिष्ट है परन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह सम्भव है⁶। अभ्यास और वैराग्य का पालन प्रति-दिन करना आवश्यक है। इस प्रकार वह अविचलित मन ब्रह्म पर स्थिर हो जाएगा फिर मुझ में आश्रित होकर मोक्ष की ओर गति करेगा। फिर ऐसे निरन्तर शरीर, मन तथा कर्म संयम करते हुए, संयमित योगी को अस्तित्व समाप्ति पर भागवत धाम की प्राप्ति होती है। कहा जा सकता है कि ध्यान के बिना परम धाम की प्राप्ति करना असम्भव है।

श्रीमद्भागवत पुराण में ध्यान विमर्श

भारतीय वैदिक साहित्य परम्पराओं में पुराणों का अधिक वैशिष्ट्य है या ये कहा जाए की अपने ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन जैसे हमारा इतिहास क्या है? संस्कृति क्या है? आदि का व्यापक रूप भागवत पुराण में देखने को मिलता है। जब श्रीमद्भागवत पुराण की चर्चा की जाए तो ज्ञान, भक्ति, योग एवं आध्यात्मिकता की व्यापक रूप में वर्णन प्राप्त होता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि किसी विद्वान् के ज्ञान की परीक्षा करनी है तो भागवत के ज्ञान से की जाती है। (विद्यावतां भागवते परीक्षा) इस बात से यह ज्ञात होता है, कि भागवत का कितना वैशिष्ट्य है। जब भागवत पुराण में ध्यान विषय की बात की जाए, तो मंगलाचरण में वर्णन प्राप्त होता है।

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥"

अर्थात्- जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती हैं वह सभी पदार्थों में सूक्ष्म, स्थूल रूप में विद्यमान है, और असत् पदार्थों से

पृथक् है, लेकिन जड़ नहीं, चेतन है, लेकिन परतन्त्र नहीं, जो स्वयं प्रकाश वाला है, ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं, उन्हें अपने संकल्प से ही जिसने उस वेद ज्ञान का दान किया है। जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियों से जल का स्थल में और स्थल में जल का भ्रम होता है। वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जागृत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठात-सत्ता से सत्यवत् प्रतीत हो रही है। अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले परम सत्यरूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं। उपरोक्त श्लोक में भगवान् कृष्ण का ध्यान किया गया है, जिससे यह प्रतीत होता हो की पौराणिक समय में भी ध्यान का वैशिष्ट्य रहा है।

जब द्वितीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में राजा परीक्षित ने श्री शुक देव जी से पूछा कि किस प्रकार की साधना से वस्तु को धारण किया जाए और उसका क्या स्वरूप माना जाए जो शीघ्र ही मनुष्य के पापों और मन के मैल (वासना) को मिटा दे? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए शुकदेव जी महाराज कहते हैं ..

"जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ।

स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धानयेद्विद्या"॥

अर्थात्- हे! परीक्षित यह जो मन को वश में करने की क्रिया है इसमें सबसे पहले आसन पर विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। जिसका परिणाम स्वरूप अधिक समय तक एक आसन में बैठकर भगवान् की उपासना कर सकेंगे। अपने श्वास (प्राणायाम) पर विजय प्राप्त करनी पड़ेगी जिससे आपके प्राणों पर संयम होगा। फिर आपको संगति (उठना-बैठना) पर विजय प्राप्त करनी है। सभी पर संयम होने के बाद आपको अपने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है। सभी वाह्य आयामों पर संयम हो जाए फिर भगवान् के स्थूल रूप का ध्यान करना है। उस स्थूल स्वरूप का ध्यान कैसे करे इसका वर्णन तृतीय स्कन्ध में वर्णित अष्टांग योग विधि में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। शुकदेव जी आगे ध्यान को दो भागों में विभक्त करते हैं, पहला स्थूल और दूसरा सूक्ष्म है। स्थूल ध्यान क्या है, मानो यह सम्पूर्ण संसार भगवान् का वपु (शरीर) जो पेड़-पौधे हैं, वे भगवान् के शरीर के रौम, जो नदियाँ हैं, वे भगवान् की नाड़ियाँ आदि का चिंतन करना ही स्थूल स्वरूप है। इस स्वरूप को धीरे-धीरे भीतर की ओर हृदय में

भगवान् की छवि का ध्यान ही सूक्ष्म ध्यान है। जब तृतीय स्कन्ध में भगवान् कपिल मुनि से उनकी माता श्री देवहूति पूछती है कि पुत्र इस संसार में मैंने सभी वस्तुओं का भोग कर लिया, परन्तु फिर भी इन विषयों की आशक्ति बनी रहती है। इन वासनाओं से कैसे मुक्ति हो? तब भगवान् कपिल द्वारा अष्टांग योग का वर्णन करते हैं। अब मैं आप को ध्यान स्वरूप के आलम्बन से युक्त योग का लक्षण बताता हूँ। जिसको अपनाने से चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न रहता है, और परमात्मा के प्राप्ति मार्ग में अग्रसर होते हैं।

"यद् मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम्।"

काष्ठ भगवतो ध्यायेत्स्वनासागरावलोकनः"॥

अर्थात् - जब योग का अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल एवं एकाग्र हो जाये और सभी विषयों से विरक्त हो जाये तो तब नासिका के अग्र भाग पर अपनी दृष्टि जमाकर भगवान् का ध्यान करना चाहिए। उस स्वरूप का मन में ऐसा चिंतन करना है कि मानो भगवान् का मुख कमल आनन्द से सुशोभित, नेत्र कमल कोश के समान, शरीर नील कमलदल के समान श्याम है, हाथों में शंख, चक्र, गदा धारण किए हुए, केसर के समान पीला वस्त्र धारण किए हुए, वक्ष स्थल में श्रीवत्स चिन्ह (श्री का चिन्ह) है, गले में कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वनमाला चरणों में लटकी हुई और भौरे मधुर स्वर गुंजन कर रहे हो। अंगों में हार सुशोभित, कमर में लड़ियाँ शोभा बाढ़ रहे, भक्तों के हृदय कलम ही उनका आसन है, उनका दर्शन अत्यंत शांत, मन और नयनों को आनन्दित करने वाले है। उनकी अत्यधिक प्रिय किशोर अवस्था, कृपा करने के लिए आतुर है, पवित्र यश, यश को बढ़ाने वाला इस प्रकार श्री नारायण का चलते-फिरते, बैठते, खड़े होते आदि निरन्तर ध्यान करना चाहिए जिससे इस सम्पूर्ण जगत आपको को ईश्वरमय लगेगा। जब इन सभी अंगों का ध्यान पूर्ण हो जाए फिर भगवान् किसी भी एक अंग का ध्यान करना चाहिए उसी को चित्त का आलम्बन बनाना चाहिए। जब जब उस आलम्बन का एकाकार हो जाए फिर समझिये कि आप ईश्वर के वाह्य स्वरूप जो जान गए है, फिर वाह्य से आंतरिक स्वरूप की ओर बढ़े इसी को स्थूल ध्यान कहते हैं।

सबसे मुख्य बात है कि परमात्मा सब जगह पूर्ण रूप से विद्यमान है। सब काल में, सभी देशों में, समस्त वस्तुओं में, सम्पूर्ण व्यक्तियों में,

सभी क्रियाओं में तथा परमात्मा साकार, निराकार आदि रूपों में सदा ज्यों-का-त्यों विराजमान है। सम्पूर्ण जगत परिवर्तनशील है परन्तु परमात्मा तत्व में किञ्चित् मात्र भी परिवर्तन न हुआ, न होगा। उस ईश्वर का ध्यान ऐसे किया जाय कि मनुष्य समुद्र की गहराई में उतर रहा हो तो जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है वहाँ तक जल-ही-जल दिखाई देता है। इसी तरह परमात्मा का भी चिन्तन ध्यान योग के माध्यम से करे, मानो भीतर भी परमात्मा है, बाहर भी परमात्मा है, ऊपर भी परमात्मा है, नीचे भी परमात्मा है, चारों तरफ परमात्मा-ही-परमात्मा परिपूर्ण है। शरीर के कण-कण में परमात्मा है इस प्रकार निरन्तर ईश्वर का ध्यान करना है, परन्तु अभ्यास की कमी के कारण मन इधर-उधर भटकता रहता है, किंतु दृढ़ संकल्प के साथ निरन्तर अभ्यास करते रहने से अभ्यास दृढ़ होता रहेगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त ग्रन्थों में ध्यान विमर्श से यह ज्ञात होता है, कि दोनों ग्रन्थों में ध्यान का वैशिष्ट्य है, या कहा जाए कि योग प्राप्ति में ध्यान एक महत्वपूर्ण साधन है, जिसके बिना मोक्ष या अपनी क्षमताओं का पता लगाना असम्भव प्रतीत होता है। यदि बात ईश्वर प्राप्ति की है, तो चित्त में ईश्वर आलम्बन किए बिना ध्यान के संभव नहीं है। आधुनिक जीवन के विषय में दोनों ग्रंथों में प्रतीत होता है कि जीवन में यदि उत्कृष्ट मार्ग की प्राप्ति करनी है तो संयम की आवश्यकता जो बिना ध्यान के सफल नहीं हो सकता है। दोनों ग्रन्थों में ज्ञान के अपार भण्डार हैं। जिसकी कोई सीमा नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीताप्रेस गोरखपुर (सं.2066) श्रीमद्भगवत्-महापुराण गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान ।
2. मूर्ति श्रीराम (सं.2047) श्रीमद्भगवत् कथा, तृतीय संस्करण श्रीपौराणिक-कार्यालय डी. 1/65, ललिताघाट वाराणसी -1
3. तीर्थ सुमतीन्द्र (1998) गीता भाष्यम् Poornaprajha Vidyapeetha Bangalore- 560028
4. गोयनन्दका श्रीहरि कृष्णदास (सं.2010) श्रीमद्भगवद्गीता श्री शांकरभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
5. गोयनन्दका श्रीहरि कृष्णदास (सं.2008) श्रीमद्भगवद्गीता श्री रामानुज- भाष्य गीताप्रेस, गोरखपुर ।

पाद टिप्पणी :

- 1 गीता महात्म्य
- 2 गीता अध्याय 6 श्लोक -10
- 3 गीता अध्याय 6 श्लोक -11
- 4 गीता अध्याय 6 -1 श्लोक- 12
- 5 गीता अध्याय 6 श्लोक -13
- 6 असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ गीता अध्याय 6 श्लोक-३५